जैन-सिद्धान्त की त्रिवेणी : अहिंसा, अनेकान्त और अपरिग्रह

(डॉ. दिव्या भट्ट)

किसीभी धर्म का प्रसार नव्य विचारों, संस्कारों एवं जीवन की सुंसबद्धता का प्रतीक है । ई. पूर्व ८०० से ई. पूर्व २०० वर्ष तक का काल इतिहास का युग कहलाता है । यह युग विश्व इतिहास में युगपुरुषों की वैचारिक क्रांति से प्रभावित रहा । यूनान में पैथागोरस, सुकरात और प्लेटो, ईरान में जरथूस्त्र, चीन में कन्फ्यूसियस तथा भारत में उपनिषद्कार, महावीर एवं बुद्ध जैसे विचारक एवं अध्यात्म क्षेत्र में क्रांति लानेवाले युग पुरुष इसी युग की देन हैं । महावीर इसी युग के पूर्वार्ध में आए एवं उन्होंने विश्व को अहिंसा, अनेकांतवाद या स्याद्वाद तथा अपरिग्रह के आधार पर संगठित कर एवं समन्वय, सहअस्तित्व तथा सौहार्द की भावना को जाग्रत कर एक आदर्श जीवन-प्रणाली को प्रस्तुत किया ।

अहिंसा जैन धर्म का मूल तत्व है । अहिंसा मात्र बाह्य आंगिक प्रक्रिया द्वारा संपन्न व्यापार का निषेध नहीं है वरन् अहिंसा का क्षेत्र हमारी आंतरिक प्रवृत्तियों से भी संबद्ध है । इसके अंतर्गत क्रोध, अहंकार, वासना आदि उन समस्त व्यापारों का उल्लेख है जिनके द्वारा प्राणी-मात्र के हृदय को ठेस पहुँचती है । भगवान महावीर ने अहिंसा का प्रतिपादन कर विश्व में शांति तथा एक्य की स्थापना करने का प्रयास किया । मानवीय स्वभाव के विभिन्न पहलुओं को मनोवैज्ञानिक रूप से चित्रित कर उन्होंने अहिंसा के सिद्धान्त को रखा है । आवेश में, क्रोध में अथवा अन्य मानसिक असंतुलन की स्थिति में मनुष्य उचितानुचित नहीं देख पाता और उस अवस्था में वह शारीरिक या मानसिक रूप से किसी अन्य प्राणी को क्षति पहुँचाकर हिंसा का भागी बनता है । इस प्रकार भगवान् महावीर ने जीवन में संतुलित विचार पद्धति को अपनाने की सलाह दी है । भगवान महावीर द्वारा प्रतिपादित अहिंसा का क्षेत्र अत्यंत व्यापक है उसमें इतनी शक्ति है कि वह विश्व को भी संगठित कर सकती है किंतु आज उनकी अहिंसा के बाह्य रूप को ही आचरण का विषय बनाकर जैन धर्मावलम्बी उसी में उलझ कर रह गए हैं । भगवान महावीर ने कहा भी है कि - "शस्त्र तलवार ही नहीं है, मनुष्य भी शस्त्र है और सही अर्थ में मनुष्य ही शस्त्र है और वह हर प्राणी शस्त्र है, जो दूसरे के अस्तित्व पर प्रहार करता है ।"

स्थूल रूप से देखने पर अहिंसा की अपेक्षा हिंसा का पलड़ा भारी दीख पड़ता है । वास्तव में जोशीली युवा-शक्ति अहिंसा को, उसकी शक्ति को समझ ही नहीं पाती है । जबकि वास्तविकता यह है कि अहिंसा की शक्ति के समक्ष हिंसा एक पग भी नहीं चल पाती । वास्तव में अहिंसा कठोर संयम चाहती है । अहिंसा के अन्तर्गत वे सभी सूक्ष्म व्यावहारिक बातें आ जाती हैं जो शस्त्र द्वारा, वाणी द्वारा अथवा व्यवहार द्वारा प्राणी-मात्र को दुःख पहुँचाने का कारण बनती हैं । यही कारण है कि शरीर द्वारा अहिंसा का पालन, वाणी द्वारा अहिंसा के पालन की तुलना में सरल है । अहिंसा प्राणी-मात्र के प्रति आत्मभाव रखने एवं विवेकपूर्ण व्यवहार द्वारा व्यक्तिगत एवं समष्टिगत दुर्भावनाओं को दूरकर एक स्वस्थ जीवन प्रणाली अपनाने की प्रेरणा देती है । इस संबंध में भगवान महावीर का कथन उल्लेखनीय है -

सयं तिवयए पाणे, अद्वन्नेहि घायए ।
हणंतं वाणुजणाइ, वेरं वड्ठर अप्पनो ॥

अर्थात् जो मनुष्य प्राणियों की स्वयं हिंसा करता है, दूसरों से हिंसा करवाता है और हिंसा करने वालों का अनुमोदन करता है, वह संसार में अपने लिए वैर को बढ़ाता है । यही कारण है कि वैदिक युग में ऋषि-मुनि अहिंसा की स्थापना नहीं कर पाए । उन्होंने स्वयं तो अहिंसा व्रत का पालन किया किंतु क्षत्रियों को यह अधिकार दिया कि वे हिंसा कर सकते हैं, इसीलिए जब ऋषि-मुनि यज्ञ करते तब क्षत्रिय यज्ञ की रक्षा के लिए सन्नद्ध रहते । क्षत्रियों ने जब अपने अधिकारों का दुरुपयोग करना शुरु किया तो परशुराम ने पृथ्वी को क्षत्रिय विहीन करने की प्रतिज्ञा ली किंतु इक्कीस बार पृथ्वी को क्षत्रिय-विहीन करने के पश्चात् भी वे हिंसा वृत्ति को रोक न सके । वास्तव में उन्होंने अहिंसा की स्थापना हिंसा द्वारा करने का प्रयास किया था और यहीं वे असफल रहे । भगवान महावीर ने अहिंसा के बाह्य एवं आंतरिक रूप की चर्चा कर, उसके सूक्ष्मातिसूक्ष्म रूप का विश्लेषण कर अहिंसा की स्थापना अहिंसा द्वारा ही संभव है यह सिद्ध किया । इस प्रकार से प्रस्थापित अहिंसा मनुष्य के हृदय को परिवर्तित कर उसे जीवन में नई दिशा प्रदान कर एक नव्य आत्मशक्ति से उसे स्फूर्त करती है ।

अनेकांतवाद या स्याद्वाद जैन धर्म का एक व्यापक सिद्धान्त है । संप्रति इसकी व्यापकता के संबंध में आचार्यों ने भी कहा है कि -

आदीपमाव्योमसमस्वभावं स्याद्वादमुद्रानतिभेदि वस्तु ।

अर्थात् दीप से लेकर व्योम तक वस्तुमात्र स्याद्वाद की मुद्रा में अंकित है । अनेकांतवाद या स्याद्वाद वस्तु के वास्तविक रूप के द्योतन हेतु अनेक दृष्टिकोण की संकल्पना स्वीकार करता है । अनेकांतवाद उन समस्त अपेक्षाओं को समन्वित कर चलता है जो एक वस्तु को मूर्त रूप में प्रतिपादित करती हैं । शुक पिच्छि के लिए भगवान महावीर ने कहा है - "व्यवहार नय की अपेक्षा से यह रुक्ष और नील है पर निश्चय नय की अपेक्षा से पाँच वर्ण, दो गंध, पाँच रस व आठ स्पर्श वाले हैं ।" इस प्रकार अनेकांतवाद के अनुसार वस्तु अनंत धर्मा है अर्थात् वस्तु के इन्द्रियग्राह्य स्वरूप एवं वास्तविक स्वरूप की संकल्पना में अंतर होता

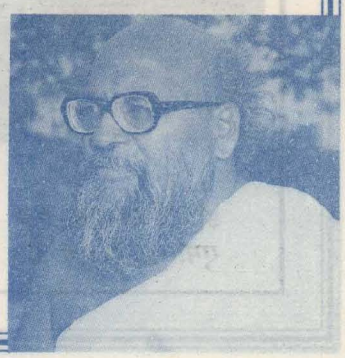

समय समय करते भला, बीत गया बहु काल ।
जयन्तसेन सुकार्य कर, दुर्गति दूर निकाल ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है । अनेकांतवाद के अनुसार एक ही वस्तु में उत्पत्ति विनाश एवं ध्रुवता जैसे परस्पर विरोधी धर्म विद्यमान रह सकते हैं । इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि वस्तु तत्व के निरूपण में या निर्णय में जो वाद अपेक्षा की प्रधानता पर बल देता है वह स्याद्वाद या अनेकांतवाद है ।

वास्तव में स्याद्वाद या अनेकांतवाद नयों की बहुमुखी है, जो मुख्य रूप से निश्चय नय एवं व्यवहार नय के आधार पर वस्तु के तात्विक एवं लोकव्यवहार में प्रचलित अर्थ को प्रतिपादित करता है । अनेकांतवाद को आचार्यों ने सरल रूप में इस प्रकार समझाया है -

"यथा अनामिकायाः कनिष्ठा दीर्घत्वं,
मध्यमामधिकृत्य ह्रस्वत्वम् ।
– प्रज्ञासूत्रवृत्ति

इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है - जब आचार्यों से पूछा गया कि आपका अनेकांतवाद क्या है तो आचार्यों ने कनिष्ठा व अनामिका सामने करते हुए पूछा - दोनों में बड़ी कौनसी है ? प्रत्युत्तर था - अनामिका बड़ी है । कनिष्ठा को समेटकर और मध्यमा को फैलाकर पूछा - 'दोनों अंगुलियों में छोटी कौन-सी है ? उत्तर मिला - अनामिका । आचार्यों ने कहा - 'यही हमारा स्याद्वाद या अनेकांतवाद है जो तुम एक ही अंगुली को बड़ी भी कहते हो और छोटी भी । उपर्युक्त उदाहरण से अनेकांतवाद सहजगम्य है ।

जैन आगमों में अनेकांतवाद के बीज उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य, स्यादस्ति, द्रव्य, गुण, पर्याय, सप्तनय आदिं विविध रूपों में बिखरे पड़े हैं । भगवान महावीर ने अपने अनेकांतवाद के अन्तर्गत इन्हें समन्वित एवं सुस्पष्ट रूप में रखकर इसे इस रूप में प्रतिपादित किया है कि हम व्यावहारिक-जीवन में अनेक विवादों से बचकर एक ऊर्ध्व-पथ की ओर गमन करें । भारतीय दर्शन को विवादों के आसन पर बैठकर काफी क्षति पहुँची है । जैन धर्म ने अपने अनेकांतवाद द्वारा समन्वय की भावना को सुदृढ़ता प्रदान कर एक वैचारिक संतुलन की स्थापना की है ।

अपरिग्रह जैन धर्म की सामाजिक समानता की भावना के प्रति एक अनूठी प्रवृत्ति है । वस्तुओं के संग्रह की वृत्ति एवं अधिकारों के संग्रह की वृत्ति ही जब अपना अतिरूप लेकर प्रकट होती है तब विवाद एवं परस्पर वैमनस्य की भावना बलवती होती है और हमारी वैयक्तिक, सामाजिक एवं राष्ट्रीय व्यवस्था को परिग्रह की यह प्रवृत्ति अव्यवस्थित कर देती है । आज चीन इसी परिग्रह प्रवृत्ति की चपेट में आ गया है । अपरिग्रह का क्षेत्र भी मात्र भौतिक स्तर पर यथाशक्य संपत्ति के अल्पीकरण एवं परित्याग पर ही आधारित न होकर वैयक्तिक, पारिवारिक एवं सामाजिक स्तर के परिसीमित दायरे में वस्तु एवं व्यक्ति विशेष के प्रति "ममत्व-विसर्जन" के रूप में भी हमारे सामने एक आदर्श-स्थिति प्रस्तुत करता है । इस प्रकार सहज रूप से संपत्ति का विसर्जन, ममत्व का विसर्जन अपरिग्रह की देन है । अपरिग्रह भाव परस्पर भौतिक एवं भावनात्मक स्तर पर समानता तथा समन्वयात्मकता प्रस्थापित करता है ।

जैन धर्म के ये तीनों सिद्धान्त "अहिंसा", "अपरिग्रह" एवं "अनेकांतवाद" आज प्रत्येक राष्ट्र के लिए अनुकरणीय है । "अहिंसा" जहाँ शांति एवं आत्मिक तेज प्रदान कर जीवन को नया मोड़ देती है वहीं "अपरिग्रह" पूर्ण समानता एवं सहयोग की भावना के साथ जीवन-पथ पर अग्रसर होने की प्रेरणा देता है तथा अनेकांतवाद या स्याद्वाद मानव के पारस्परिक समस्त वाद-विवादों का एक सही हल प्रदान कर किसी वस्तु को, किसी धर्म को, किसी कथ्य को देखने-सुनने एवं उसके निरूपण हेतु एक नवीन दृष्टिकोण प्रदान करता है । संप्रति आज की परिस्थिति में यह आवश्यक है कि जैन धर्म अपने सिद्धांतों को सही रूप से प्रतिपादित करे । अहिंसा को सिर्फ "किचन पालिटिक्स" (खाद्याखाद्य) तकही सीमित न रख विश्व स्तर पर 'मनसा, वाचा, कर्मणा' के रूप में क्रियान्वित करे साथ ही अनेकांतवाद एवं अपरिग्रह के द्वारा एक नया दृष्टिकोण एवं एक नवीन व्यवस्था की स्थापना का प्रयास कर जैन धर्म के वास्तविक रूप की सक्रिय स्थापना करे ।

अहिंसा, अनेकांत और अपरिग्रह दरअसल एक सिद्धान्त के तीन पहलू हैं - अहिंसा का आचार, अनेकांत का विचार और अपरिग्रह का व्यवहार मनुष्य के जीवन को चेतना के ऊर्ध्वमुखी सोपानों पर स्थापित करता है । साधक की यह जीवनी शक्ति है जो सामान्य व्यक्ति के लिए जीवन शैली (way of life) है । महावीर जिन तत्वों की चर्चा करते हैं उन्हें उन्होंने अपनी जीवन-साधना की कसौटीपर कसकर देखा है इसलिए काल की धूल और राख उन सिद्धान्त वचनों की आग को ढक नहीं सकती । समय के परिवर्तन और प्रत्यावर्तन के साथ उसके नित नए अर्थ उद्घाटित होते रहते हैं ।

लेखिका : भाषाविज्ञान तथा शैलीविज्ञान में विशेष अध्ययन । सम्प्रति : व्याख्याता (हिन्दी), विद्यालय, शहादा (धुलिया), महाराष्ट्र.

डॉ. दिव्या एस. भट्ट
एम.ए., पी.एच.डी.

समय गया आता नहीं, समझ मनुज नादान ।
जयन्तसेन सचेष्ट हो, कर जीवन उत्थान ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org